RESEARCH PAPER

RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
e-ISSN: 2455-3085 | Vol.07 | No.01 | January 2022 | pp. 104-108
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

Era perception in Hindi literature | हिन्दी साहित्य में युग बोध

*Urmila Kumari Yadav

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur

Abstract

When the analytical or critical situation is seen in all the genres of literature, then it is necessary to pay attention to the traditional sources. Philosophy, analysis and marking of the country's conditions gives an introduction to the then era-environment. The interrelationship of human tendencies, problems, events and ideologies gives place in literature to the so-called trends, relevance, experiences of the epoch situations, this is Yugabodh. Yugabodh is the concept of knowledge of contemporary situations. Contemporary conditions include the political, social, economic, religious and cultural conditions of a period. Artistic and literary works are created from the era and also reveal it. Modernity has an inextricable relationship with the present, so each era is a modern era in itself.

Keywords: *era, modernity, trends, literature*

Abstract in Hindi

जब साहित्य की सभी विधाओं में विश्लेषणात्मक या समीक्षात्मक स्थिति देखी जाये, उस समय परम्परागत स्रोतों की ओर ध्यानाकर्षण आवश्यक है। देशकाल परिस्थितियों का दर्शन, विश्लेषण एवं अंकन से तत्कालीन युग–परिवेश का परिचय होता है। मानवीय प्रवृत्तियों, समस्याओं, घटनाओं एवं विचारधाराओं का परस्पर सम्बन्ध युगीन परिस्थितियों की तथाकथित प्रवृत्तियों, प्रासंगिकताओं, अनुभवों को साहित्य में स्थान देता है, यही युगबोध है। युगबोध समसामयिक परिस्थितियों के ज्ञान की अवधारणा हैं। समसामयिक परिस्थितियों में किसी काल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ शामिल होती हैं। कलात्मक और साहित्यिक रचनाएँ युगबोध से निर्मित होती हैं तथा उसका प्रकटन भी करती हैं। आधुनिकता का वर्तमान से अटूट सम्बन्ध रहता है इसलिए प्रत्येक युग अपने आप में एक आधुनिक युग हैं।

Keywords: *युगबोध, आधुनिकता, प्रवृत्तियों, साहित्य*

Article Publication

Published Online: 20-Jan-2022

***Author's Correspondence**

Urmila Kumari Yadav

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur

manoj.yadav2006[at]yahoo.com

10.31305/rrijm.2022.v07.i01.014

© 2022 The Authors. Published by RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

शोध विस्तार :– युगबोध का अर्थ निकलता है– काल या समय की एक विशिष्ट अन्तरावधि की अभिव्यक्ति। 'युगबोध' से सामान्यतः युग की योग्यताओं, स्थितियों एवं संदर्भों का बोध होता है। प्रत्येक देश एवं समाज का अपना बोध हेाता है और युग के परिवर्तन के साथ उसका बोध भी बदलता और विकसित होता रहता है। प्रत्येक कथाकार अपनी निजी समझ और ज्ञान के आधार पर विशेष युग की विभिन्न प्रवृत्तियों का उद्घाटन अपनी रचनाओं में करता है। 'युग' शब्द के मूल में जो 'युज' धातु है, वह रूधादि गण की उभयपदी सकर्मक धातु है और उसका अर्थ है– जोड़ना, मिलाना, संयुक्त करना। ''युग' शब्द अपनी व्याप्ति में सम्पूर्ण मानव–संस्कृति का काल सापेक्ष अर्थ देता है, इसलिए जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में किसी विशिष्ट युग अथवा काल की चर्चा करते हैं तो उस युग की सामान्य प्रवृतियों, परिस्थितियों एवं उपलब्धियों का अर्थ बोध हो जाता है।[1]

'बोध' शब्द संस्कृत की 'बुध' धातु से बना है जिसका अर्थ है– जानना, ज्ञान, जानकारी। बोध का सामान्य अर्थ है– दृष्टि, विवेक, अनुभूति, संवेदना तथा चैतन्य आदि। बोध का अर्थ है, ज्ञान की अनुभूति। 'युग' शब्द का कोशगत अर्थ– 'समय' या 'काल' है तथा बोध का अर्थ–प्रत्यक्ष ज्ञान होना या जानकारी होना। दूसरे शब्दों में सामाजिक परिवेश में परम्परागत मूल्यों से नूतन मानदण्डों की स्थापना। समय और समाज की काल अवधि होती है। युग का संबंध जितना अर्थ बोध से है उससे कहीं अधिक मूल्यबोध से। वैयक्तिक मूल्य व्यापक अर्थों में प्राप्त होने पर अपना सीमित दायरा त्यागकर सामाजिक बन जाते हैं और फलस्वरूप एक युग विशेष की मान्यताएँ घोषित होती हैं। वस्तुतः युग परिवर्तन मूल्यों एवं मान्यताओं के कारण ही

होता है, इसलिए कोई मूल्य बहुत से समानधर्मी व्यक्तियों को प्रभावित करता है, तब वह बोध की वृत्ति धारण करता है और इस तरह 'युग विशेष' का निर्माण स्वयं हो जाता है।

जब कोई सामाजिक मूल्य अधिक समयावधि तक जनमानस पर अपना प्रभाव छोड़ता है तो बोधवृत्ति का कारण बन जाता है, वहीं साहित्यकार व समाज की युगीन परिस्थितियों के कारण बौद्धिक चिन्तन कर समाज को प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। इस प्रकार विशेष निर्धारित कालावधि में होने वाले परिवर्तनों के प्रति सजगता युग सापेक्ष घटनाक्रम युग बोध की नवीन परिणति कर मूल्यों के संक्रमण को भी रोकता है तथा सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश को प्रभावित किये बिना नहीं रहता है और वर्तमान अतीत के मूल्यों के प्रति सजग होकर अतीत का रूप धारण कर लेता है।[2]

साहित्यिक दृष्टिकोण से देखें तो युग को हम कालखण्ड में भी विभाजित कर सकते हैं– व्यक्ति, घटना और काल तीन रूपों में विभाजित युगबोध हिन्दी साहित्य की व्याख्या को समीचीन रूप में प्रस्तुत करता है। वर्तमान युग साहित्य में नैतिकता और सिद्वान्तों से परे यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूरित हैं। बौद्धिकता और यांत्रिकता इस युग की प्रवृत्ति है, इस कारण मानव बौद्धिकता के धरातल से परे यांत्रिक हो गया है। आज की मानवीय सोच तनाव, भय, घुटन, सत्रांस, विक्षोभ, अनिश्चितता तथा अनैतिकता से त्रस्त दृष्टिगोचर होती है। रूप में कहना होगा कि मनुष्य ने उसकी हजारों वर्षों की ज्ञान साधना में इस अथाह विश्व के विषय में जो कुछ समझ लिया है, उस प्रचुर ज्ञान के भण्डार का बोध हम व्यापक अर्थ में ले सकते हैं। समाजोपयोगी कार्यशैली तथा कथित परम्पराओं व रूढ़ियों से अलग हटकर चलने की प्रवृत्ति भी युगबोध का ही एक हिस्सा है।

साहित्यकार अपने साहित्य में युगीन सत्य का उद्घाटन अपनी संवेदना के माध्यम से नवीन रूप से करता है, उसमें व्यक्त सत्य युगबोधगम्य हेाता है। साहित्यकार सूक्ष्म दृष्टा होता है, उसमें भावुकता सर्वाधिक होती है और युग परिवेश में घटित घटनाओं को अपने शब्दो में चित्रित करता है। युगबोध प्राचीन मूल्यों का नवीन मूल्यों से टकराहट का फल है। वास्तव में वर्तमान भी अतीत की ही अगली कड़ी होता है, जो कुछ समय पश्चात् उसमें जुड़ जाता है। देशकाल जन्य युगबोध में अतीत की स्मृतियाँ उपस्थित रहती है।[3] वर्तमान में जीते हुए जहाँ कहीं भी विरोध दिखाई पड़ता है वही आधुनिकता के लक्षण अवश्य प्रतीत होते है। यह आधुनिकता वास्तव में एक अर्द्धविकसित प्रक्रिया है, जिसकी कोई स्थूल, पूर्वनिश्चित और अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है।

युगबोध की अवधारणा मूलतः आधुनिकता की ही उपज है। आधुनिकता का वर्तमान से अटूट संबंध रहता है। साहित्य के इतिहास में भी विकास प्रकिया में अनेक युग दिखाई पड़ते हैं, जैसे–भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रयोगवादी युग आदि। इस प्रकार युगबोध के साथ इतिहास बोध भी अभिन्न रूप से जुड़ा रहता है। गहरी दृष्टि से देखने पर ही पता चल पाता है कि इतिहास बोध एक निस्संग दृष्टा की भाँति खड़ा होकर भिन्न–भिन्न परम्पराओं में भेद कर पाता है।

आशापूर्ण चिंतन और आस्था का वर्णन भी आधुनिकता के अन्तर्गत आता है, लेकिन यह आधुनिक युग बोध के अंतर्गत नहीं आता। इससे स्पष्ट है कि 'आधुनिकता' और 'युगबोध' अलग–अलग भाव के सूचक हैं। प्रत्येक युग अपने में आधुनिक रहता है। युगबोध का सम्बन्ध समसामयिकता एवं आधुनिकता से है। प्रत्येक युग का साहित्यकार युगबोध के अनुसार ही साहित्य सृजन करता है। उसका भविष्य दर्शन भी युग बोध से असंपृक्त नहीं रह सकता। युगबोध की निर्मिति में उस युग की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का बड़ा हाथ रहता है। युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों और तकनीकी ज्ञान का इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहता है। युगीन विशेषताओं का बोध ही युगबोध है। जिस रचना में युग का बोध नहीं होता, वह उस युग का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती।[4]

मनुष्य की विचार प्रणाली निरंतर स्पंदित होती रहती है। वह अपनी अनुभूतियों को किसी न किसी तरह से व्यक्त करता रहता है। प्राणियों में यह गुण नहीं पाया जाता। साहित्यकार चूंकि सामान्य लोगों की तुलना में अधिक संवेदनशील होता है। अतः उसकी अनुभूति भी विशिष्ट होती है। जिससे उसकी रचना प्रक्रिया को नया आयाम मिलता है, इसीलिए अनुभूति वह प्राण तत्व है जो घटनाओं, भावों, विचारों और मानवीय सम्बन्धों के कच्चेमाल को एक जीवन सृष्टि का रूप और गौरव देता है। इस प्रकार व्यक्ति और साहित्य दोनों ही संदर्भों में अनुभूति का महत्व निर्विवाद एवं अक्षुण्ण दिखाई देता है। अनुभूति की सच्चाई और गहराई वास्तविकता और प्रामाणिकता के अभाव में कोई भी कृति निर्मूल दिखाई देती है।

काव्य के सन्दर्भ में युगबोध की परिकल्पना यद्यपि समय के साथ–साथ परिवर्तित होती रहती है फिर भी तत्कालीन सभी विशिष्टताओं को संश्लिष्ट रूप में साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिये जैसा समाज होगा, जैसी संस्कृति होगी, उस समय के लोगों का आचार–विचार भी वैसा ही होगा। उनकी सभ्यता–संस्कृति के लेखा–जोखा का उत्तरदायित्व उनके इतिहास एवं साहित्य को निभाना पड़ता है किन्तु साहित्य व इतिहास का दृष्टिकोण व प्रस्तुति सदैव

भिन्न–भिन्न होती है।[5] हर सृजनधर्मी साहित्यकार को जीवन–मूल्यों की बदलती परिकल्पना के प्रति कवि व साहित्यकार की नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह सृजन के धरातल पर युगबोध की हर धड़कन को रेखांकित करे और अतीत की वर्तमानता को भविष्य की अक्षय निधि बनाने में अन्य साहित्यकारों का सहभागी बनें। जिस साहित्यकार की सृष्टि में युगबोध को अभिव्यक्ति देने एवं उसे काल–मुक्त करने की क्षमता होती है, ऐसे रचनाकार साहित्य के इतिहास में अमर होते है।[6]

साहित्य में युगबोध की अभिव्यक्ति वस्तु चयन के साथ ही शिल्पगत प्रयोग के रूप में भी प्रकट होती है। आधुनिक काव्य नाटकों के मुख्यतः तीन वर्ग हैं जो क्रमशः पुराकथा, इतिहास और वर्तमान समस्याओं के यथार्थ पर आधारित है। ये आधार निश्चय ही आधुनिक युगबोध से प्रेरित है। इसी प्रकार से काव्य नाटक मंच विधान संबंधी नए प्रयोगों को ध्यान में रखकर रचे गए हैं जिसके कारण आधुनिक युगबोध शिल्पगत रूप में दिखाई देता है।

युगबोध की प्रक्रिया में चूँकि गतिशीलता विद्यमान रहती है। अतः उसे किसी निश्चित मापदण्ड द्वारा परिभाषित कर सकना सम्भव नहीं दिखाई देता। वह काल की अविच्छिन्न धारा में होने वाली एक ऐसी अवस्था है जो निरंतर परिवर्तनशील दिखाई देती है। युगबोध एक धारा के समान है, जो संभवतः काल सापेक्ष है, जिसकी भावचेतना मनुष्य, समाज और उसके परिवेश से संग्रहित दिखाई देती है। युगबोध व्यक्ति के समक्ष स्वयं उभरकर नहीं आता, अपितु संवेदनशीलता कलाकार को अपने परिवेश के प्रति विशुद्ध करती है, समाज की गतिविधियों की जिसे सही पहचान है। अपनी अनुभूति और युगीन चेतना के माध्यम से अपनी कृति में रूपांकित करता है। जिस मानसिकता को साहित्य ग्रहण करता है। वह मनुष्य की आन्तरिक भावना को पुनः प्रतिष्ठित करने में सहायक दिखाई देता है, जो कि मूल्यों की खोज करता है। अपनी संकल्प शक्ति के द्वारा मनुष्य और संस्कृति के प्रति तुच्छ मानसिकता को दूर करके उसका मानवीय नियति से साक्षात्कार कराने में सहायक होता है। यही भावपशुत्व से मानव, जड़ से चेतन मानव अस्तित्व की स्थापना करने में सहायक बनता है। युगबोध, युग परम्परा, युग चेतना का क्षेत्र समाज पर आधारित होता है जिसका दायरा भौगोलिकता पर भी निर्भर करता है।[7]

मनुष्य स्वभाव एवं आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है क्योंकि वह समाज में रहता है तथा समाज में रहते हुए युगों से चली आ रही परम्पराओं, रूढ़ियों का अनुसरण करते हुए उससे हटकर जीवन नहीं जी पाता है। समाज के विकास के दो कारण है– एक तो ऐतिहासिक तथा दूसरा भौगोलिक। पहले वाले रूप में समाज का विकास काल क्रम में धीरे–धीरे होता है तथा भौगोलिक होने के कारण समाज का विकास देश विशेष में होता है। युगीन समस्याएँ जैसे– जातिवाद, धार्मिक अन्धविश्वास, छुआछूत जैसी संकीर्ण मानसिकता उस परिवेश में थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि समाज सुधारकों ने इसका डटकर विरोध किया। एक रूप तो आदर्श रूप तथा दूसरा यथार्थ रूप है। यथार्थ की बात करें तो किसी भी वस्तु का वास्तविक चित्रण।

सामाजिक जीवन में होने वाली समस्याओं में दहेज प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, तलाक, विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध, विवाहेत्तर सम्बन्धों के कारण आपसी तनाव की स्थितियाँ बनती–बिगड़ती है। समाज को चलाने के लिए कुछ निश्चित मापदण्ड स्थापित किये हैं, उन्हीं के अनुरूप समाज में रहने की बात कही है। 'रामचरितमानस' ग्रन्थ प्रमुख आधार है। सामाजिकता को मानवीय प्रकृति की एक सुदृढ़ व्यवस्था या प्रवृत्ति कहना समीचीन होगा। व्यक्ति व समाज का सम्बन्ध चोली–दामन का है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित कहना ठीक होगा। यह तथ्य सार्वभौम है कि जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त व्यक्ति समाज से परे नहीं रह सकता तथा समाज व्यक्ति से परे रहकर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। व्यक्ति और समाज की पृष्ठभूमि व्यापक सन्दर्भो को लिए हुए है। ज्ञान की दृष्टि अपने आप में व्यापक समृद्धि है। व्यक्ति जीवन में अनुभवों को अर्जित कर लिपिबद्ध करता है।[8]

आज भौतिकवादी युग होने के कारण आवश्यकताएँ अधिक है। अतः धन का महत्व बढ़ जाना स्वाभाविक है। समाज, परिवार व देश की सुदृढ़ता धन द्वारा ही संभव है। राजनीतिक व सांस्कृतिक परिदृश्य की चर्चा करें तो देश की स्थिति मजबूत व कमजोर अर्थ पर ही निर्भर करती है, अमीरी–गरीबी का अन्तर भी धन द्वारा ही ज्ञात होता है। आर्थिक आधार पर दो वर्ग होते है–शोषक व शोषित वर्ग। धनाभाव में मानवीय जीवन नारकीय हो जाता है। समाज, साहित्य, दर्शन, व्यक्ति, धर्म, राजनीति, संस्कृति सभी परस्पर मानवीय सम्बन्धों की युक्ति है। प्राचीन काल से ही मनुष्य का प्रमुख उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रहा है परन्तु वर्तमान भौतिकतावादी युग में अर्थ का महत्व बढ़ गया है। आज राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का निर्धारक बिन्दु 'अर्थ' हो गया है। आज परिवार व समाज में सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक कार्यों में व्यक्ति बढ़–चढ़कर धन व्यय करते दिखाई देते हैं क्योंकि अधिक धन व्यय करना उच्चवर्गीय मानसिकता का प्रतीक है।

संस्कृति की परिधि बहुत है, आकार विशाल है तथा किसी सूत्र में बाँधना कठिन है। रीति–रिवाजों, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, पर्वोत्सवों तथा कार्य–व्यापारों में भिन्नता होती है, किन्तु आधार एक ही होता है। लोक प्रचलित

परम्पराएँ, रूढ़ियाँ तथा आंचलिक परिवेश में भिन्नता होती है किन्तु संस्कार और संस्कृति एक ही होती है। जिन रीति–रिवाजों व परम्पराओं का पालन करते हुए जीवनयापन करते हैं वहीं संस्कृति कहलाती है। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों से होते हुए रामायण, महाभारत काल तथा कालिदास, माघ आदि के साहित्यिक कलेवर को समृद्ध करते हुए वर्तमान काल तक पहुँचते हैं लेकिन साहित्यिक मूल्यों का परिवर्तन भी किसी न किसी रूप में साहित्य को प्रभावित करता है। इस प्रकार साहित्य, समाज व संस्कृति को परस्पर अन्योन्याश्रित कहना समीचीन होगा।

आज का युग बदल रहा है। धर्म को राजनीति से जोड़कर राजनीतिक लाभ लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। आज विश्व बन्धुत्व की उदार भावना का अभाव देख सकते है। आज की मानवीय चेतना निजी हित पूर्ति हेतु उचित–अनुचित मार्ग से कार्य सिद्धि को अपनी सफलता का मार्ग मानकर विसंगतियों का पुतला बन गया है। भ्रष्टाचार तथा असामाजिक तत्व उत्तम मार्ग का कंटक बनकर उन्नति के मार्ग को अवरूद्ध कर धर्म की आड़ में कुकृत्यों में लीन रहकर समाज में कुरीतियों व दुराचारों का मसीहा बनता जा रहा है, जो उनकी पालना की अपेक्षा दुराचार को चुनता है। जीवन की नियति एवं प्रवृति जीवन के विविध मार्गों का दर्शन कराती है। धार्मिक मूल्य व्यक्ति के जीवन रूपी गाड़ी को पटरी से अलग होने से रोकती है, साथ ही मानव से मानवेत्तर बनने की राह दिखाती है। सनातन धर्म की चर्चा करें तो हिन्दू धर्म इहलौकिक की अपेक्षा पारलौकिक मान्यताओं के प्रति अधिक महत्वशाली था क्योंकि लौकिक सुख की अपेक्षा पारलौकिक सुख की कामना अधिक चाहता है। समाज, परिवार व राष्ट्र का विकास करने में धर्म की महती भूमिका रहती है।[9]

स्पष्ट होता है कि जब–जब धर्म की हानि होती है तो धर्म स्थापना के लिए ईश्वरीय शक्ति को अवतरित होकर पुनः धर्म की स्थापना करनी पड़ती है। युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों धर्म और अधर्म के प्रतीक है। कर्म करने की प्रेरणा से ही वांछित फल की प्राप्ति संभव है। समाज, साहित्य, धर्म, कानून, विधि तथा परम्पराएँ एक गूदड़ी वाले धागे हैं, जिनको पिरोकर समाज की वर्ण व्यवस्था को कायम रखा है। साहित्यकार का धर्म समाज को उन्नत ज्ञान, सद्प्रेरणा तथा धार्मिक उन्मेष युक्त समाज का निर्माण करने की प्रेरणा देता है। तथाकथित वर्ण, जाति, धर्म का विवेचन रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषदों में किया है। आज उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया है किन्तु धर्म और संस्कृति द्वारा संस्कार पूर्ण जीवन धर्म कहलाता है।

आंग्ल भाषा में नीतिषास्त्र के लिए 'एथिक्स' और 'मोरल फिलोसपी' शब्द का प्रयोग करते है। एथिक्स शब्द यूनानी नाम टाएथिका का मूल अर्थ है। इसका मूल शब्द एथोंस है जिसका अर्थ– चरित्र है। 'एथोंस' का सम्बन्ध रूढ़ियों एवं आदतों से है। 'मॉरेल' शब्द 'मौरीज' से निकला है जिसका अर्थ है– आदतें एवं रूढ़ियाँ है। इस प्रकार नैतिक बोध व्यवहार के वे नियम या प्रतिमान है, जिनके न करने से कानूनी दण्ड की व्यवस्था तो नहीं है, परन्तु पालन करने से मानवीय गुणों का विकास होता है तथा मानव जीवन को समाजोपयोगी बनाया जा सकता है। ये सुन्दर व स्वस्थ समाज निर्माण के महत्वपूर्ण आधार हैं। नैतिकता हमारे कार्यों के औचित्य की समर्थक है। अतएव नीति–पालन से समाज के सम्पूर्ण मनुष्य को सुख प्राप्त होता है।[10]

यथार्थबोध प्रगतिवादी कविता की मुख्य प्रवृत्ति है। यथार्थवाद किसी निश्चित दर्शन का नाम नहीं, किन्तु इसके मूल मे भौतिक चेतना निहित है। यहीं भौतिक चेतना मार्क्सवाद में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा इतिहस की आर्थिक अवधारणा के रूप में विकसित हुई। समय–समय पर भौतिक चेतना अनेक दार्शनिक सिद्वान्तों के रूप में प्रकट हुई और उसने एक निश्चित एवं रूढ़ आकार ले लिया। यथार्थबोध एक व्यापक भौतिक धारणा है, जिसकी साहित्य एवं कला के क्षेत्र में अधिक चर्चा की जाती है।

''आध्यात्मिक बोध शब्द आध्यात्मिक़बोध दो शब्दों से मिलकर बना है। 'बोध' का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है जबकि आध्यात्मिक की संक्षिप्त विवेचना अपेक्षित है। ''आत्मा का स्वरूप अदृश्य है। भौतिक शरीर, प्राण, मन, इच्छा आदि कुछ भी नहीं है। वह इन सबका अंतर्निहित आधार है। प्रतिभा उत्साह, वीरत्व सृजनकारी आत्मा के प्रतीक हैं। इनकी उपलब्धि ईश्वर को दिव्य की झांकी है।'' इसी असीम सत्ता का जहाँ आभास होने लगता है, वहीं आध्यात्म की भावना का उदय होता है। आत्मा ही अपने स्थूल, सूक्ष्य कारण आदि शरीरों में विद्यमान रहता है और यह आत्मा ही शुद्व बुद्व–चैतन्य–स्वरूप है। इसी से जीवनधारी उत्पन्न होते हैं। जागृति, स्वप्न, सुसुप्ति, तुरीया अथवा वैश्वानर, तेजस प्राण तुरीय आदि आत्मा की चार अवस्थाएँ है। जीव, लोक, देव, प्राण आदि सबका समावेश इसी में हो जाता है। यही आनंदमय ब्रह्म है व प्रत्येक जीव इसी में लीन होना चाहता है। भारतीय आध्यात्म आत्मा का दर्शन है। हमारे यहाँ की आध्यात्मिकता मन–बुद्वि–चित्त और अहंकार से परे हैं। वह आत्मा का साक्षात् अनुभव करना चाहती है। इस प्रकार की भावनाएँ जब साहित्य में व्यक्त होती हैं, तब वही आध्यात्मिक बोध होता है।[11]

परब्रह्म की उपलब्धि के लिये अनेक ऐसे कृत्यों का विधान है जिसका परिपालन आत्मा के लिये आवश्यक माना जाता है। इन सभी कृत्यों एवं कर्मकाण्डों को आध्यात्मिकता से संबंधित माना गया है। इन कर्मकांडों में प्रमुख संध्योपासना,

यज, तप का महत्व, व्रत का पालन, कर्मकांड का विरोध, त्याग भाव, वैराग्य, मनोबल की महत्ता, ईर्ष्या–द्वेष, खण्डन, आशीर्वाद, न्याय की प्रधानता आदि का वर्णन होता है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का गुणगान, भौतिकता का विरोध एवं आध्यात्मिकता का समर्थन आदि इसी के अन्तर्गत आता है। आध्यात्म मुख्यतः आत्मा की सत्ता स्वरूप विवेचन पर निर्भर करता हैं और यह दर्शन का विषय भी है। इस प्रकार यह जब विभिन्न रूपों में साहित्य का विषय बनता हैं, तब आध्यात्मिक बोध कहलाता है। यह आध्यात्मिक बोध किसी न किसी रूप में सदैव साहित्य को प्रभावित करता रहा है।

निष्कर्ष–एक विशिष्ट कालावधि में होने वाले परिवर्तनों के प्रति सजगता ही युगबोध है। भले ही यह परिवर्तन समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश के बिन्दु पर ही क्यों न हो। हिन्दी साहित्य में युगबोध सभी विधाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है तथा साहित्यकार को नवीन सृष्टि (रचना) करने के लिए प्रेरित करता है और उसी आधार पर सृजन करता है। व्यक्ति सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों, परिस्थितियों व मान्यताओं का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार 'युगबोध' शब्द व्यापक अर्थों वाला तथा विभिन्न बोधों को अपने में समाहित किये हुए है। युगबोध की अवधारणा मूलतः आधुनिकता की उपज हैं। युगबोध सामयिक होता है जबकि आधुनिक युग का बोध आधुनिकता से सम्पन्न होता हैं। इसलिए आधुनिकता को आधुनिक युगबोध समझ लिया जाता हैं। युगबोध की पाश्चात्य अवधारणा में पाश्चात्य विचारकों ने साहित्य सम्बन्धी अपने सिद्वान्त प्रस्तुत किये, जिनका वर्तमान साहित्य में अपना महत्व हैं।

संदर्भ सूचीः–

चतुर्वेदी, द्वारिका प्रसाद एवं झा, पं. तारिणीष : संस्कृत शब्दार्थ–कौस्तुभ, पृ. 926

दिनकर, रामधारी सिंह : साहित्य मुखी, पृ. 11

द्विवेदी, डॉ. मुकुन्द : हिन्दी उपन्यास युग चेतना एवं पाठकीय संवेदना : पृ. 35

वर्मा, भगवतीचरण : 'साहित्य के सिद्वांत तथा रूप', पृ. 58

नलिन, जयनाथ : साहित्य का आधार दर्शन, पृ. 58

मेघ, डॉ. रमेश कुन्तल : 'आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण', पृ. 245

सिंह, डॉ. पुष्पपाल : समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, पृ. 10

द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद : 'साहित्य की महता', प्रथम अनुच्छेद, पृ. 4

'दिनकर', रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 65

बाबू गुलाबराय : 'सिद्वांत और अध्ययन', पृ. 50

गुप्त, गणपति चन्द्र : 'साहित्य की आकर्षण शक्ति', पृ. 31